पञ्चम-अध्याय

पातञ्जलयोगदर्शन में निहित व्यक्तित्व अवधारणा का महत्व एवं प्रासङ्गिकता

5.0 प्रस्तावना :–

प्रस्तुत शोधकार्य के प्रथम अध्याय में शोध–विषय की पृष्ठभूमि, आवश्यकता, उद्देश्य इत्यादि के विवेचन के पश्चात् सम्बन्धित साहित्य के पुनरावलोकन से दृष्टिकोण का विस्तार करते हुए, विवेचित शोध प्रविधि के अनुसार पातञ्जलयोग–दर्शन में निहित व्यक्तित्व अवधारणा का विश्लेषण एवं व्याख्या की गई। प्रस्तुत अध्याय में उक्त अवधारणा की वर्तमान समय में प्रासङ्गिकता एवं महत्व पर विचार किया जायेगा।

5.1 अन्य प्राचीन भारतीय विचारधाराएँ एवं योगदर्शन का महत्त्व एवं प्रासङ्गिकता –

प्राचीन भारतीय दर्शन और विचारों का महत्त्व एवं प्रासङ्गिकता वस्तुतः निर्विवाद है शिक्षा आयोग[115] के प्रतिवेदन में शिक्षा के राष्ट्रीय लक्ष्य के विषय में चर्चा करते हुए 'एक चुनौती और एक आस्था' शीर्षक के अन्तर्गत कहा है कि –

"केनोपनिषद् का प्रारम्भिक छन्द आज भी वैज्ञानिक और अन्वेषी मस्तिष्क के लिए उतना ही आह्वानकारी है जितना कि सहस्रों वर्षों पूर्व था:

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः।
केन प्राणः प्रथमं प्रैति युक्तः।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति।
चक्षुः श्रोत्रं क उ देवोयुनक्ति।

किस (शक्ति) से प्रेरित होकर यह (मन) अपने विषय की ओर जाता है ? किससे प्रयुक्त होकर प्रथम प्राण (अपने पथ पर) आगे बढ़ता है ? किससे प्रेरित होकर मनुष्य (अभीष्ट) वाणी बोलते हैं ? तथा वह कौन सा देवता है जो आँख और कान को अपने काम में लगाता है ?"

अर्थात् चरम सत्य की खोज वैदिक काल से लेकर आज तक समान रूप से सर्वाधिक गूढ़ प्रश्न है। भारत का समस्त प्राचीन दार्शनिक साहित्य प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष रूप से वेदों से अनुप्राणित है। योग का मूल भी वेदों में ही निहित है। उपनिषद् साहित्य में भी इसका पर्याप्त विकास हुआ है। विविध भारतीय दर्शनों के बीच योगदर्शन का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है और उसका कारण है इस दर्शन की सर्व स्वीकार्यता। आस्तिक एवं नास्तिक सभी दार्शनिक सम्प्रदाय किसी न किसी रूप में योगसाधना को स्वीकार करते हैं। भारतीय मान्यता में जीवन का लक्ष्य त्रिविध दुःखों की निवृत्ति पूर्वक मोक्ष प्राप्ति हैं। सभी दर्शनों ने आत्मा या ब्रह्मस्वरूप का विवेचन किया हे तथा स्वयं में अन्तर्निहित चरम सत्य को करने के लिए मार्ग प्रदर्शित किया है।

किन्तु विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों द्वारा प्रतिपादित सत्य का ज्ञान या आत्मसाक्षात्कार बिना योग–साधना के सम्भव नहीं है। अर्थात् योग साधना दर्शन का व्यावहारिक पक्ष है जो भारतीय दर्शन को जीवन से जोड़ता है अतः आत्म–साक्षात्कार के साधन के रूप में योग की स्वीकृति मिली है। इसीलिये विभिन्न ग्रन्थों में योग का माहात्म्य वर्णित हैं। यथा महाभारत में कहा गया है – "न तु योगमृते प्राप्तुं शक्या सा परमा गतिः।"

115- भारत सरकार, *शिक्षा आयोग की रिपोर्ट (1964–66)* नई दिल्ली, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, 1966, पृ.क्र. 26

गीता में उल्लेख मिलता है – *"योग कर्मसुः कौशलम्।*

तथा

"तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।' 6.46

अन्य दर्शनों का मुख्य लक्ष्य आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध की मीमांसा करना है उसमें आनुषङ्गिक रूप से यत्र–तत्र व्यक्तित्व विवेचन भी प्राप्य है। किन्तु पातञ्जलयोगदर्शन का मुख्य ध्येय ही व्यक्तित्व की मीमांसा करते हुए अन्ततः उस सुविकसित व्यक्तित्व की स्थापना करना है जो आत्मानुभूति के लक्ष्य को प्राप्त करने में सक्षम हो सके, इस प्रकार स्वयं सिद्ध है कि योग दर्शन अपेक्षाकृत अधिक महत्वशाली है।

समाजोपयोगी दर्शन होने के कारण आज योग को देश–विदेशों में अपनाया जा रहा है तथा इसके माध्यम से व्यक्तित्व के विकास की प्रत्यक्ष अनुभूति की जा रही है। यह विचारधारा आज सब प्रकार के भेदभावों से परे जनसामान्य का शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकास कर रही है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सिद्धान्त के साथ व्यवहार का समन्वय होने के कारण योगदर्शन का महत्त्व अन्य विचारधाराओं से अधिक सिद्ध होता है तथा आज लोगों द्वारा निरन्तर प्रयोग में लाने के कारण प्रासङ्गिक भी है।

5.2 प्रसिद्ध पश्चिमी व्यक्तित्व सिद्धान्त एवं यौगिक व्यक्तित्व अवधारणा का महत्व एवं प्रासङ्गिकता

आधुनिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में फ्रायड के उद्भूत होने के बाद व्यक्तित्व–अध्ययन में एक नया मोड़ आया। रूग्ण मन एवं व्यक्तित्व की विकृतियों को समझने हेतु एक नई दिशा मनोविज्ञान को प्राप्त हुई। फ्रायड ने मनुष्य को मूल प्रवृत्तियों का दास कहा तथा अचेतन में निहित अविवेकी शक्तियों को मनुष्य का सञ्चालक माना। काम के आधार पर व्यक्तित्व के हर पक्ष की व्याख्या वस्तुतः एकांगी दृष्टिकोण है। फ्रायड के सिद्धान्त पर चिन्तन किया जाय तो प्रतीत होता है कि इसमें जीवन का कोई आदर्श लक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है। यह मूलप्रवृत्तियों की पूर्ति तथा इड, इगो व सुपरइगो में सामञ्जस्य को ही व्यक्तित्व विकास मानता है किन्तु जीवन का सत्य तो यह है कि मूलप्रवृत्तियों व इच्छाओं की पूर्णतः तृप्ति कोई नहीं कर सकता क्योंकि ये अनन्त है अतः योगदर्शन अपरिग्रह तथा प्रत्याहार का मार्ग दर्शाता है। फ्रायड के मत में सर्वविध काम को एक मौन स्वीकृति मिल जाती है जबकि भारतीय चिन्तन में धर्मविमुख काम मनोरोग है। सम्पूर्ण योग–दर्शन इन्द्रियों के नियन्त्रण द्वारा इन मूलप्रवृत्तियों पर विजय की बात कहता है। फ्रायड इत्यादि मनोविश्लेषणावादियों के अचेतन के महत्त्व को स्वीकार तो किया किन्तु उस पर नियन्त्रण कैसे किया जाय तथा अन्तर्दृष्टि का विकास कैसे हो, इस तथ्य पर वह मौन है जबकि योगदर्शन में अष्टाङ्ग योग के माध्यम से इसी का प्रतिपादन किया गया है।

फ्रायड के बाद युंग का सिद्धान्त मनोरोगियों के साथ स्वस्थ लोगों हेतु भी उपयोगी रहा। युंग ने माना कि व्यक्तित्व के सारे कार्यों का निष्पादन मानसिक ऊर्जा द्वारा होता है। कई अन्य मनोवैज्ञानिकों ने भी मानव

को एक ऊर्जा तन्त्र माना है किन्तु उस ऊर्जा का सञ्चय कैसे किया जाय तथा उसे विकास के लिए कैसे उपयोग किया जाय इसका उत्तर हमें यौगिक विचारधारा में प्राप्त होता है। एडलर इत्यादि मनोवैज्ञानिकों ने पूर्णता के प्रयास को व्यक्तित्व विकास का अन्तर्नोद माना है किन्तु उस पूर्णता के चरमबिन्दु पर कोई दृष्टि प्रदान नहीं की गई है।

मैस्लो द्वारा आवश्यकताओं के पदानुक्रम में आत्मसिद्धि को जोड़ने से आधुनिक मनोविज्ञान में आध्यात्मिक आयाम का प्रवेश हुआ । उसके पश्चात् उन्होने इससे भी आगे आत्म अतिक्रमण की आवश्यकता का प्रतिपादन किया। मैस्लो ने व्यक्तित्व के क्षेत्र में एक आशावादी दृष्टिकोण के साथ मानव की उस अभिलाषा को उद्घाटित किया जिसमें वह पूर्णता प्राप्त करना चाहता है किन्तु मैसलो का मानवतावाद मानवीय सीमाओं में अहं केन्द्रित चेतना के विकास तक ही सीमित रह जाता है जबकि योग दर्शन में अहं की क्षुद्र सत्ता से ऊपर उठकर आत्मा की महान सत्ता की ओर उन्मुख होने का मार्ग व्यक्तित्व विकास हेतु निर्दिष्ट किया गया है। मैस्लो के चरम–अनुभवों की उनकी पराकाष्ठा तक ले जाया जाय तो वह यौगिक समाधि अवस्था ही होगी।

ऑलपोर्ट इत्यादि शीलगुणों के आधार पर व्यक्तित्व की व्याख्या करने वाले विद्वानों ने भूतकालीन स्मृतियों, अनुभवों व अचेतन को अपने सिद्धान्त में कोई महत्व नहीं दिया वस्तुतः पाश्चात्य व्यक्तित्व सिद्धान्तवादियों ने व्यक्तित्व क्या है, और क्यों है इसका विवेचन तो किया है पर उसे आदर्श और उन्नत व्यक्तित्व के रूप में कैसे विकसित किया जा सकता है, इस सम्बन्ध में कोई व्यवस्थित मार्ग या प्रक्रिया नहीं बताई, जैसी कि योगदर्शन में उल्लिखित है।

पाश्चात्य और यौगिक अवधारणाओं में एक मुख्य अन्तर यह दिखाई देता है कि पश्चिमी व्यक्तित्व सिद्धान्तों में बताया गया है कि जिस व्यक्ति का व्यक्तित्व असन्तुलित है उसे मनोचिकित्सा कर कैसे ठीक किया जा सकता है तथा योग ऐसी पद्धति का वर्णन करता है जिसके अपनाने से व्यक्ति के व्यक्तित्व में असन्तुलन ही न हो तथा वह समग्र विकास की ओर अग्रसर हो।

यह सत्य है कि आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान ने पर्याप्त विकास किया है तथा विविध व्यक्तित्व सिद्धान्त प्रतिपादन के साथ व्यक्तित्व परीक्षणों का निर्माण भी किया है किन्तु उनके अनुसार व्यक्तित्व का अध्ययन संवेदना, उद्वेग, प्रत्यक्षीकरण, कल्पना, विचार, स्मृति आदि मानसिक प्रक्रियाओं तथा उनको उत्पन्न करने वाले भौतिक कारणों और शारीरिक अवस्थाओं के अध्ययन तक ही सीमित है ये मानते हैं कि इन्द्रियजन्य ज्ञान से नाड़ियो द्वारा बाह्य जगत की उत्तेजनाओं के फलस्वरूप किया गया व्यक्ति का व्यवहार ही व्यक्तित्व का निर्धारण करता है। किन्तु वस्तुतः हमारा इन्द्रियजन्य ज्ञान ही सम्पूर्ण नहीं है मन और आत्मा की सम्पूर्ण शक्तियों का ज्ञान केवल इन्द्रिय–अनुभव के आधार पर नहीं हो सकता। एक ओर तो आधुनिक मनोविज्ञान अमूर्त्त चिन्तन योग्यता को उच्च बुद्धि का द्योतक मानता है वहीं दूसरी ओर मन और आत्मा के अस्तित्व को इसीलिये नकारता है क्योंकि वे मूर्त्त नहीं है। अतः कहीं न कही कोई न्यूनता या विशृङ्खलता अवश्य है। यद्यपि आज पाश्चात्य जगत् में भी यह मान्य किया जा रहा है कि व्यक्तित्व के अध्ययन हेतु मन तथा चेतन सत्ता की शक्तियों को जानना भी जरूरी है अतः "आज परामनोविज्ञान पाश्चात्य मनोविज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा बन गई है। अभी तक परामनोविज्ञान का अध्ययन चार विषयों तक सीमित है – अतीन्द्रिय ज्ञान (Clairvoyance), विचार–सम्प्रेषण (Telepathy), पूर्वाभास या पूर्वसंज्ञान (Pre-cognition) और मस्तिष्कीय आन्दोलन द्वारा प्राणी जगत् और पदार्थ का प्रभावित होना (Psychokinesis)।"[116] ये सब आत्मा की शक्तियाँ हैं जहाँ बुद्धि का अतिक्रमण हो जाता है।

116- लज्जाराम तोमर, भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान के आधार, हरियाणाः विद्या भारती प्रकाशन, वि.स. 2056, पृ.क्र. 85

योगदर्शन में मनोजन्य, प्रज्ञाजन्य और फिर समाधिजन्य ज्ञान की जो अवस्थाएँ वर्णित हैं, वे वस्तुतः परामनोविज्ञान का ही विषय है अतः योग दर्शन में वर्णित प्रक्रियाओं का महत्व और प्रासङ्गिकता सहज सिद्ध होती है, साथ ही आधुनिक मनोविज्ञान में व्यक्तित्व के कुछ सिद्धान्त जीवविज्ञान और सामाजिक विज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित है कुछ मनोविज्ञान और दर्शनशास्त्र के सिद्धान्तों पर, जबकि व्यक्तित्व के अध्ययन हेतु अन्तर अनुशासनात्मक उपागम की आवश्यकता है। योगदर्शन में शारीरिक विज्ञान, सामाजिक उत्कर्ष, मानसिक शुद्धि और आध्यात्मिक चेतना का अद्भुत समन्वय है अतः व्यक्तित्व के सर्वाङ्ग पूर्ण सिद्धान्त के निर्माण हेतु योगदर्शन का महत्व एवं आवश्यकता प्रतीत होती है।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग[117] (1948–49) ने भी विश्वविद्यालयीन शिक्षा के उद्देश्यों में 'नव–भारत' पर चर्चा करते हुए 'An Integrated way of life' शीर्षक के अन्तर्गत इस बात को स्पष्ट किया है –

"The purpose of all education, it is admitted by thinkers of East and West, is to provide a coherent picture of the universe and an integrated way of life. We must obtain through it a sense of perspective, a synoptic vision. a Samanvaya of the different items of knowledge. Man can not live by a mass of disconnected information."

इस प्रयोग प्रधान युग में मनुष्य अनुकूल परिणामों को देखकर कार्य में प्रवृत्त होता है तथा इस कसौटी पर भी योगदर्शन खरा उतरता है क्योंकि पूर्वोक्त विभिन्न शोधों के माध्यम से यह सिद्ध हो चुका है कि चिन्ता, अवसाद, निराशा, तनाव इत्यादि को दूर कर शान्त, स्वस्थ व प्रसन्न जीवन जीने में योग, ध्यान, प्राणायामादि सहायक होते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अन्य भारतीय विचार धाराओं की तुलना में प्रायोगिक दर्शन होने के कारण तथा आधुनिक व्यक्तित्व सिद्धान्तों से उच्चतर चिन्तन होने के कारण पातञ्जलयोगदर्शन अत्यन्त महत्त्वशाली है तथा भौतिक आपाधापी की अन्धाधुन्ध दौड़ से उत्पन्न विभिन्न व्यक्तित्व विकारों को शान्त करने में समर्थ होने के कारण प्राचीन–काल से कहीं ज्यादा आज प्रासङ्गिक है।

---

117. Government of india, ***The report of the university Education Commission (1948-49)*** New Delhi: ministry of Education, Government of india, 1962, Vol. – I, Chapter. –I, P. 34,